International Journal of Multidisciplinary Research and Development
Online ISSN: 2349-4182, Print ISSN: 2349-5979, Impact Factor: RJIF 5.72
www.allsubjectjournal.com
Volume 4; Issue 5; May 2017; Page No. 336-342

आचार्य शङ्कर तथा शाङ्करभाष्यानुरूप अनिर्वचनीयता

योगेन्द्र भारद्वाज

शोधच्छात्र, एम.फिल. प्रथम वर्ष, विशिष्ट संस्कृताध्ययन केन्द्र, ज.ने.विवि., नई दिल्ली, दिल्ली, भारत ।

प्रस्तावना

अखिल ब्रह्माण्ड की रची सृष्टि में सम्पूर्ण प्राणिवर्ग सुख को ही परम-पुरुषार्थ समझता है। सभी मनुष्य सुख की प्राप्ति के लिए ही सांसारिक तथा पारलौकिक कार्यों के सम्पादन में सदा लगे रहते हैं। उनका मानना है कि इच्छाओं की पूर्त्ति होना ही सुख की वास्तविक परिभाषा है। किन्तु समस्त इच्छाओं की पूर्त्ति होना ही सुख की उनके निःशेष होने में ही है, क्योंकि जब तक कोई इच्छा बनी रहेगी, तब तक सुख की न्यूनता भासित होती रहेगी। पारलौकिक सुख साधनों से उत्तमोत्तम स्वर्गादि सुख सम्पन्न होकर भी " क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोके विशन्ति[1]" पुण्य के क्षीण होने पर पुनः मृत्युलोक में आना होता है एवं "पुनरपि जननम् पुनरपि मरणम्" अर्थात् जन्म-मरण के चक्र में कामनाएं नाचती ही रहती हैं। अतः वासतविक सुख तभी समझना चाहिए जब समग्र कामनाओं का शम हो जाए।

भारतीय मनीषा नितान्त कुशाग्र तथा मर्मस्पर्शिनी है। आत्मद्रष्टा भारतीय ऋषिवर्ग इसी के बल पर विश्वदृष्टा हो पाया और यथार्थ तथा सार्वभौमिक सत्य का चिन्तन कर अनवरत तपश्चर्या और एकान्तिक साधना के द्वारा परमतत्त्व का साक्षात्कार किया, जिसके आलोक से चराचर जगत् प्रकाशित है। उनकी दृष्टि अन्तर्मुखी थी, क्योंकि बहिर्मुखी इन्द्रियों के द्वारा जिस अन्तरात्मा का साक्षात्कार सर्वथा असम्भव है, यही किसी धीर पुरुष को दृष्टिगत हुआ, जो विषय-पराङ्मुख और मुमुक्षु थे।[2]

भारतीय मनीषियों ने आत्मजिज्ञासा तथा लोकजिज्ञासा के शम हेतु विचारों को प्रतिपादित किया और वह "दृश्यते ज्ञायते वस्तु याथात्म्यं अनेन इति दर्शनम्" के रूप में प्रख्यात हुआ। भारतीय दार्शनिक परम्परा की अन्यान्य शाखायें हुईं। इनमें से एक शाखा वेदान्त दर्शन के रूप में प्रतिष्ठित है। वेदान्त का पर्याय "उपनिषद्" भी है। यही ब्रह्मविद्या है और वेद की व्याख्या का अन्तिम स्तर होने से इसे वेदान्त कहा जाता है। उपनिषदों को प्रमाणरुप में मानकर चलने वाले शास्त्र को "वेदान्तदर्शन[3]" कहा जाता है।

वेदान्त दर्शन के मूल:

वेदान्त दर्शन जीव, ब्रह्म, माया तथा जगत्- इन तत्वों के विवेचन से ही एक विचार का सूजन करता है। ऋग्वेद का एक प्रसिद्ध मन्त्र को वेदान्त दर्शन तथा अन्यान्य दर्शनों का मूल कहा जा सकता है-

"द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वति अनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति ॥[4]"

पुरुषसूक्त के आदि आरम्भ में वर्णित आदिपुरुष, वेदान्त के ब्रह्म के सामर्थ्य से संगति रखता है-

"सहस्त्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
स भूमिं विश्वतो वृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ॥[5]"

इसीप्रकार आदिपुरुष से उत्पन्न विराट्पुरुष जो वेदान्त का ईश्वर है तथा उसका आश्रय लेकर उत्पन्न हुआ पुरुष ही जीवात्मा अर्थात् वेदान्त का जीव है-

"तस्माद् विराळजायत विराजो अधिपूरुषः ।
स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद् भूमिमथो पुरः॥[6]"

आचार्य शंकर और अद्वैतवेदान्त-

न मे मृत्युशंका न मे जातिभेद: पिता नैव मे नैव माता न जन्म ।
न बन्धुर्न मित्रं गुरुर्नैव शिष्य: चिदानंद रूप: शिवोऽहम् शिवोऽहम् ॥[7]

वेदान्त दर्शन के अद्वैतवाद के उद्घोषक आचार्य शंकर हुए। इनके आविर्भाव काल की धार्मिक एवं दार्शनिक स्थिति चिन्तनीय थी। एक ओर बौद्ध धर्म का ह्रास होते हुए भी उसका पूर्ण उच्छेद नहीं हुआ था और दूसरी ओर मीमांसक विद्वान् वैदिक कर्मकाण्ड के आध्यामिक महत्त्व को समझाने में असफल सिद्ध हो रहे थे। ऐसी स्थिति में एक ऐसे धर्म एवं दर्शन के प्रचारक की आवश्यकता थी, जो समाज की धार्मिक एवं दार्शनिक एकता के स्तम्भ की स्थापना कर सके। यह कार्य आचार्य शंकर ने अद्वैतवाद की स्थापना के द्वारा किया।

शंकराचार्य-पूर्ववर्ती काल में अद्वैतवाद सिद्धान्त अनाविष्कृत था, ऐसा कहना असंगत होगा, क्योंकि आचार्य शंकर ने ही अपने भाष्यग्रन्थों में अपने पूर्ववर्ती वेदान्त के आचार्यों का उल्लेख किया है।[8] अतः सिद्ध है

---

[1] श्रीमद्भगवद्गीता ९/२१

[2] पराञ्चिखानिव्यतृणत्स्वयम्भूः तस्मात्पराङ्पश्यति नान्तरात्मन् ।
कश्चिद्धीरः प्रत्यगात्मानमैक्षदावृत्तचक्षुरमृतत्वमिच्छन् ॥ कठो.२/२१

[3] वेदान्तो नामोपनिषत्प्रमाणम् ॥ वेदान्तसार

[4] ऋग्वेद १/१६४/२०

[5] ऋग्वेद १०/९०/१

[6] ऋग्वेद १०/९०/५

[7] निर्वाणषटकम् ५.

अद्वैतवेदान्त का ऐतिह्य भी है और निश्चित है कि शंकराचार्य को अपने पूर्ववर्ती धार्मिक एवं दार्शनिक साहित्य से अद्वैत सम्बन्धिनी विचारधारा की एक सबल पृष्ठभूमि उपलब्ध हुई थी। किन्तु आचार्य शंकर का प्रमुख आधार बादरायण मुनि का ब्रह्मसूत्रदर्शन एवं उपनिषद् दर्शन था। परम्परा यद्यपि प्राचीन थी, किन्तु अद्वैत के महत्तम प्रचार-प्रसार के कारण आदि शंकराचार्य को ही अद्वैत वेदांत का प्रणेता माना जाता है। उनके विचारोपदेश आत्मा और परमात्मा की एकरूपता पर आधारित हैं जिसके अनुसार परमात्मा एक ही समय में सगुण और निर्गुण दोनों ही स्वरूपों में रहता है। स्मार्त संप्रदाय में आदि शंकराचार्य को शिव का अवतार माना जाता है। इन्होंने ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, मांडूक्य, ऐतरेय, तैत्तिरीय, बृहदारण्यक और छान्दोग्योपनिषद् तथा गीतादि महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों पर भाष्य लिखा।

अद्वैतवेदान्त-

मनीषीगण अद्वैतवेदान्त के स्वरूप/ अद्वैत शब्द का निर्वचन करते हैं-

> द्विधा इतं द्वीतम्, तस्य भावो द्वैतम्।
> द्विधेतं द्वीतमित्याहुस्तद्भावो द्वैतमुच्यते ।
> न विद्यते द्वैतं द्विधाभावो यत्र तदद्वैतमिति॥

अद्वैतवेदान्त एकमात्र ब्रह्म को सत्य, नित्य एवं सर्वोपरि तत्त्व के रूप में मान्यता प्रदान करता है। यही कारण है कि इस दर्शन का प्रारम्भ ही "ब्रह्मजिज्ञासा"[9] से होता है। बृहवृद्धौ धातु से वृद्धि अर्थ में "मनिन्" प्रत्यय के योग से ब्रह्म शब्द निष्पन्न होता है अर्थात् महान, व्यापक, निरवधिक, निरतिशय महत्त्व से युक्त तत्त्व ही ब्रह्म है। "वृंहणात् ब्रह्म" इस व्युत्पत्ति के अनुसार देश, काल तथा वस्तु आदि से अपरिच्छिन्न नित्यतत्त्व ही ब्रह्म है।[10]

ब्रह्मतत्त्व का लक्षण देते हुए वेदान्तदर्शन का कथन है कि जिस प्रकार उष्णता, लौहित्य एवं प्रकाश द्वारा दीपक का लक्षण किया जा सकता है। ठीक उसी प्रकार सत्, चित् और आनन्द इन तीन शब्दों के माध्यम से ब्रह्म का स्वरूप प्रतिपादित किया जा सकता है। श्रुति वाक्य इस विषय में प्रमाण है-

> "सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म ॥"[11]" विज्ञानमानन्दं ब्रह्म ॥"[12]" आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात् ॥"[13]

आचार्य शंकर का परब्रह्म अखण्ड, सच्चिदानन्द स्वरूप और अवाङ्मनसगोचर हैं[14], क्योंकि उस ब्रह्म को इन्द्रियों से नहीं महसूस किया जा सकता, देखा नहीं जा सकता अपितु उसके द्वारा ही इन्द्रियां गतिशील होती हैं।[15] उस परब्रह्म के साक्षात्कार के पश्चात् साधक की अज्ञानग्रन्थि विनष्ट हो जाती है और उसके सभी प्रकार के कर्म क्षीण होकर सभी संशय दूर हो जाते हैं।[16]

अनिर्वचनीयता

अज्ञान की अनिर्वचनीयता-

अज्ञान शब्द का विग्रह " न ज्ञानमित्यज्ञानम्" के रूप में किया जाता है। सामान्यतः नञ् के छह अर्थ प्रसिद्ध हैं।**[17]** यहाँ अज्ञान शब्द में नञ् विरोध का वाचक है, अभाव का नहीं। यह इसलिए स्वीकार किया जाता है, क्योंकि अज्ञान भावरूप होता है। उसकी प्रतीति **"**अहमज्ञः" अर्थात् मैं नहीं जानता हूँ' के रूप में होती है। अतः अज्ञान की भावरूप में सत्ता होने से तथा उसका ज्ञान के द्वारा निवर्तन किए जाने से उसे **"** ज्ञानविरोधी**"** कहा जाता है। सदानन्द द्वारा उल्लिखित वेदान्तसार में अज्ञान का लक्षण**[18]** सटीक व्याख्या करता है।

आचार्य शङ्कर अपने प्रकरण-ग्रन्थों में अज्ञान को अनादि और अनिर्वचनीय कहते हैं- " अनाद्यविद्या-निर्वाच्य कारणोपाधिरुच्यते ॥**"[19]**

वेदान्तसार में अज्ञान को न सत्, न असत् और न ही सदसदुभयात्मक स्वरूप कहकर सदसद्भिन्न कहा गया है। यह न साङ्ग है और न ही अङ्गरहित है और न ही उभयात्मक। यह अत्यन्त अद्भुत एवं अनिर्वचनीयरूप है। यह अज्ञान माया का ही पर्याय है।

आचार्य शंकर स्वरचित ग्रन्थ सर्ववेदान्त-सिद्धान्त-सारसंग्रह में अनिर्वचनीयता के सम्बन्ध में वर्णन करते हैं। उनके वचन हैं कि सीपी में रजत की प्रतीति होने की जगह जैसे रजत का बोध हो जाता है, वैसे ही सीपी का बोध नहीं होता है। जिस अज्ञान को अवस्तु कहा जाता है, वही जगत् के अध्यास का कारण है।**[20]**

अविद्या को ब्रह्म के समान सत् शब्द से भी नहीं कह सकते और आकाशकुसुमादि के समान असत् भी नहीं कह सकते, किन्तु वह मिथ्या है और केवल एक ज्ञान से ही दूर हो सकता है, सत्त्व-रज-तम ये तीन

---

[8] "इति मन्यन्तेऽस्मदीयाश्च केचित्॥' ब्र.सू.शा.भा. १/३/१९
तथा च सम्प्रदायविदो भवन्ति॥ ब्र.सू.शा.भा.१/४/१४
अत्रोक्तं वेदान्तसम्प्रदायविद्भिराचार्यैः ॥ ब्र.सू.शा.भा. २/१/९
यैरिमे गुरुभिः पूर्वं पदवाक्यप्रमाणतः।
व्याख्याताः सर्ववेदास्तास्तान्नित्यं प्रणतोऽस्म्यहम् ॥ तै.उप.शा.भा. मंगलाचरण

[9] अथातो ब्रह्मजिज्ञासा ॥ ब्रह्मसूत्र १/१/१

[10] ब्र.सू.शा.भा. १/१/१ (रत्नप्रभा टीका)

[11] तैत्ति. शा.भा. २/२/१

[12] बृहदा. शा.भा. ३/९/२८

[13] तैत्ति. शा.भा. ३/६

[14] अखण्डं सच्चिदानन्दमवाङ्मनसगोचरम् ॥ वेदान्त सार

[15] यच्चक्षुषा न पश्यति येन चक्षूँषि पश्यति ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥ केनोप. शा.भा. १/६

[16] भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः ।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे ॥ मुण्डकोप.शां.भा. २/२/८

[17] तत्सादृश्यमभावश्च तदन्यत्वं तदल्पता ।
अप्राशस्त्यं विरोधश्च नञर्थाः षट् प्रकीर्तिताः ॥ सि.कौमुदी

[18] अज्ञानं तु सदसद्भ्यामनिर्वचनीयं त्रिगुणात्मकं ज्ञानविरोधि भावरूपं यत्किञ्चिदिति "अहमज्ञ"इत्याद्यनुभवात् । (वेदान्तसार)

[19] प्रकरणपञ्चकम्, आत्मबोध, श्लोक १४

[20] शुक्तेर्बाधा न खल्वस्ति रजतस्य यथा तथा ।
अवस्तुसंज्ञितं यत्तज्जहदध्यासकारणम् ॥ सर्ववेदान्त-सिद्धान्त-सारसंग्रह ३०३

गुण ही उसका स्वरूप है, एकमात्र वस्तु के तत्त्व का ज्ञान होने से ही वह दूर होती है और ज्ञान से दूर हो जाना ही उसका लक्षण है।[21]

विद्वज्जन अज्ञान को प्रकृति, शक्ति और अविद्या शब्द से कहते हैं, यह सीपी में प्रतीत होने वाले रजत के समान सत् या असत् नहीं है।[22] जैसे दीपक की प्रभा दीपक से भिन्न या अभिन्न, कुछ नहीं कहा जा सकता, जैसे अंकुर को बीज का अनंश या अंश कुछ भी नहीं कह सकते, वैसे ही अज्ञान को ब्रह्म का अवयव या अनवयव कुछ नहीं कहा जा सकता[23], यही अनिर्वचनीयता है। इसीलिए विद्वान् पुरुषों ने ऐसा निश्चय कर लिया है कि यह अज्ञानरूपा अविद्या अनिर्वचनीय है और समष्टि-व्यष्टि के भेद से दो प्रकार की कही गई है।[24]

वस्तुतः अनिर्वचनीयता का विचार अध्यारोप व अपवाद के सिद्धान्त से सम्बन्ध स्थापित करता है और मायायुक्त इस जगत् को मिथ्या सिद्ध करता है। सत्य का ज्ञान करके वह जीव उस ब्रह्म के साक्षात्कार का यत्न करता है और साक्षात्कार कर इस जन्म-मृत्यु के बन्धन से मुक्त होकर तदाकाराकारित (ब्रह्माकारित) हो जाता है। अविद्या, माया, अज्ञान आदि को अनिर्वचनीय कहकर वेदान्तियों ने सम्बोधित किया है।

वस्तु में अवस्तु का आरोप ही "अध्यारोप"[25] है अर्थात् सर्प की सत्ता से रहित रज्जु में सर्प की प्रतीति के सदृश, वस्तु (ब्रह्म) में अवस्तु (अज्ञानदि सकल जडसमूह) का आरोप ही अध्यारोप है और इसी को ब्रह्मसूत्र शांकर भाष्य में अध्यास[26] कहकर सम्बोधित किया है। इसी अध्यारोप को भ्रम, विपर्यय के नाम से भी जाना जाता है। इसे तथा इसमें विशेषण रूप में भासित होने वाले विषय को वेदान्तिक भाषा में "अनिर्वचनीय[27]" कहा जाता है। अध्यास अर्थात् स्मृति सदृश दूसरे में पूर्वकाल में देखी गयी वस्तु की प्रतीति को अध्यास कहते हैं। मतलब किसी अन्य में अन्य की प्रतीति। जब सत्य का ज्ञान हो जाता है अर्थात् रज्जु में रज्जु की प्रतीति का ज्ञान होने को ही वेदान्ती अपवाद कहते हैं।

अद्वैतवेदान्त के अनुसार "सत्" वह है, जिसका त्रिकाल में बाध नहीं हो सके[28] अर्थात् जो कूटस्थ, नित्य और सदा एकरस एवं अपरिणामी हो। इस अर्थ में ब्रह्म अथवा आत्मा ही सत् है और वही परमार्थ है। "असत्" वह तत्त्व है जिसकी त्रिकाल में कोई सत्ता न हो और जिसमें कभी "सत्" के रूप में प्रतीत होने का सामर्थ्य भी न हो।[29] इस अर्थ में वन्ध्यापुत्र और खपुष्प आदि "असत्" हैं। वेदान्त में "सत्" और "असत्" शब्द अपने आत्यन्तिक अर्थ में प्रयुक्त हुए हैं। किन्तु समस्त लौकिक अनुभव में कोई भी वस्तु ऐसी नहीं है, जिसे वेदान्तानुसार सत् और असत् कहा जा सके। सत् ब्रह्म जीव के लौकिक अनुभव के ऊपर है और असत् या तुच्छ वन्ध्यापुत्रादिक लौकिक अनुभव के नीचे है। अतः लौकिक अनुभव का समग्र क्षेत्र "सदसदनिर्वचनीय" अथवा "मिथ्या" पदार्थों तक सीमित है। जो भी पदार्थ है, वह ज्ञेय, दृश्य, परिच्छिन्न और अचित् होने के कारण सदसदनिर्वचनीय या मिथ्या पदार्थों तक सीमित है। जो मिथ्या है, वह अविद्या, माया अथवा भ्रम है।

अविद्या को आचार्य शंकर निखिल सृष्ट वस्तु की बीजशक्ति कहा गया है। यह बीजशक्ति अव्यक्त है। माया सत् नहीं है, क्योंकि निरपेक्ष अपरिवर्तनशील तत्त्व ही एकमात्र सत् है। पारमार्थिक दृष्टि से असत् भी नहीं है, क्योंकि तब तो इसके कारण जगत् का प्रातिभासित होना सम्भव ही नहीं हो सकता है। अतः न तो यह सत् है और न ही असत्। अतः इसे अनिर्वचनीय कहा गया है।[30] यही माया को प्रकृति रूप में विद्यमान है और उसी के अवयव भूत (कार्य-करणसंघात) से यह सम्पूर्ण जगत् व्याप्त है।[31]

आचार्य शंकर प्रश्नोपनिषद् में कहते हैं कि अपने-आपको बाहर से अन्य प्रकार प्रकट करते हुए जो अन्यथा कार्य करना है, वही मिथ्याचाररूपा माया है।[32] वस्तुतः अज्ञान को ही अनिर्वचनीय कहा गया है और माया ही अज्ञान अथवा अविद्या है।

बृहदारण्यकोपनिषद् के वचन हैं "अथो खल्वाहुर्जागरितदेश एवास्यैष इति यानि ह्येव जाग्रत्पश्यति तानि सुप्तः"[33] आत्मा का यह जागरित देश ही है, क्योंकि जो जागते हुए को देखता है, वह सोते हुये को भी देखता है। फलतः जाग्रत सदृश सुषुप्ति सृष्टि भी माननी चाहिए। इस शङ्का का समाधान आचार्य शंकर ब्रह्मसूत्र शांकर भाष्य[34] में करते हैं कि स्वप्न में जो रथ आदि पदार्थों का दर्शन होता है, वह केवल विपरीतज्ञानमात्र है, उनका वहां निर्माण नहीं होता, वह प्रतीतिमात्र है, धोखा है, भ्रान्ति है क्योंकि वहां अर्थ का अभिव्यंजन पूर्णरूप (कात्स्र्य) से नहीं हो पाता। कात्स्र्य से तात्पर्य किसी वस्तु का उचित देश एवं काल में उचित निमित्तों से न होना है। यह शीघ्र ही नष्टप्रायः होते हैं, यथार्थ नहीं। उपनिषद् में ही यह सिद्ध है कि स्वप्नसृष्टि विपर्ययमात्र है, यथार्थ नहीं।

---

[21] सदसद्भ्यामनिर्वाच्यमज्ञानं त्रिगुणात्मकम् ।

वस्तुतत्त्वावबोधैकबाध्यं तद्भावलक्षणम् ॥ सर्ववेदान्त-सिद्धान्त-सारसंग्रह ३०४

[22] अज्ञानं प्रकृतिः शक्तिरविद्येति निगद्यते ।

तदेतत्सन्न भवति नासद्वा शुक्तिरौप्यवत् ॥ सर्ववेदान्त-सिद्धान्त- सारसंग्रह ३०७

[23] सतो भिन्नमभिन्नं वा न दीपस्य प्रभा यथा ।

न सावयवमन्यद्वा बीजस्याङ्कुरवत् क्वचित् ॥ सर्ववेदान्त-सिद्धान्त-सारसंग्रह ३०८

[24] अत एतदनिर्वाच्यमित्येव कवयो विदुः ।

समष्टिव्यष्टिरूपेण द्विधा ज्ञानं निगद्यते ॥ सर्ववेदान्त-सिद्धान्त-सारसंग्रह ३०९

[25] असर्पभूतायां रज्जौ सर्पारोपवद्वस्तुन्यवस्त्वारोपोऽध्यारोपः ॥ वेदान्त सार-६

[26] स्मृतिरुपः परत्र पूर्वदृष्टावभासः ॥ ब्र.सू.शा.भा.

[27] निर्वचन न हो सके जिसका, वह अनिर्वचनीय है। न वह सत् हो और न वह असत् हो अथवा यों कहें तो सदसद्भिन्न ही

अनिर्वचनीय है। यह एक वेदान्तिक पारिभाषिक शब्द है, जिसका प्रयोग अज्ञान, माया हेतु किया गया है।

[28] त्रिकालाऽबाध्यत्वं सत्यत्वम् ।

[29] क्वचिदप्युपाधौ सत्त्वेन प्रतीत्यनर्हत्वम् अत्यन्तासऽसत्त्वम् ॥

[30] अविद्यात्मिका हि बीजशक्तिरव्यक्तशब्दनिर्देश्या परमेश्वराश्रया महासुषुप्तिः, यस्यां स्वरूपप्रतिबोधरहिताः शेरते संसारिणो
जीवाः। तदेतदव्यक्तं क्वचिदाकाशशब्दनिर्दिष्टम् एतस्मिन्नु खल्वक्षरे गार्ग्याकाश ओतश्च प्रोतश्च ॥ बृहदा. उप.शारी.भा. ३/८/११

[31] माया तु प्रकृतिं विद्यात् मायिनं तु महेश्वरम् ॥ श्वेता.शां.भा. ४/१०

[32] माया नाम बहिरन्यथात्मानं प्रकाश्यान्यथैव कार्यं करोति, सा माया मिथ्याचाररूपा ॥ प्रश्नोप. शां.भा. १/१६

[33] बृहदा.शा.भा. ४/३/१४

[34] मायामात्रं तु कात्स्र्न्येनानभिव्यक्तस्वरूपत्वात् ॥ ब्र.सू.शां.भा. ३/२/३

इसी अनिर्वचनीय माया (अज्ञान) को श्रीमद्भगवद्गीता में अलौकिक और त्रिगुणमयी बताया गया है। इसको पार करना मात्र ज्ञान के द्वारा ही सम्भव है। ज्ञान होने पर इस जगत् के मिथ्यात्व से जीव परिचित होकर बन्धमुक्त हो जाता है।[35]

अधिष्ठान की दृष्टि से शंकर की माया एवं अनिर्वचनीयता-

समस्त मायिक प्रपञ्च की सत्ता बिना आधार के असम्भव है। इसलिए शांकर मायावाद के अनुसार ब्रह्म प्रपञ्चरूप जगत् का अधिष्ठान है।[36] प्रातिभासिक रूप से सत् मृगतृष्णिका आदि मिथ्या पदार्थ भी बिना आश्रय के नहीं रह सकते।[37] इसलिए समस्त मायिक जगत् का अधिष्ठान् सद्ब्रह्म है। चेतनाधिष्ठित अचेतन भी समस्त प्रपञ्च की उत्पत्ति का कारण है।[38] आचार्य शंकर का कथन है कि सत्य एवं अनृत- दोनों के द्वारा ही समस्त लौकिक व्यवहार चलते हैं।[39] सत् ब्रह्म में ही असत् एवं अनात्म प्रपञ्च अध्यस्त होता है। सत् ब्रह्म पर आधारित माया उसी प्रकार अध्यस्त है, जिस प्रकार अविवेकी जन अप्रत्यक्ष आकाश को नीलत्व, श्यामत्व, शुक्लत्व का आरोप कर लेते हैं।[40]

इस प्रकार प्रत्येकात्मा में अनात्म प्रपञ्च का अध्यस्त होना स्वाभाविक ही है। इस अध्यास[41] को ही शङ्कराचार्य ने अविद्या कहा है और यही अविद्या अनिर्वचनीय है। अविद्या ही समस्त द्वैत प्रपञ्च का मूल है। एक ब्रह्म में ही अविद्या के द्वारा अनेक प्रकार की सृष्टि उत्पन्न होती है। ब्रह्म ही समस्त मायिक सृष्टि का अधिष्ठान है। जिस प्रकार स्वप्न में एक आत्मा में रथ, अश्व एवं मार्ग आदि का अध्यारोप होता है, परन्तु उसकी वास्तविक सत्ता नहीं होती, उसी प्रकार एक ब्रह्म में विवर्त के द्वारा अनेकाकारा सृष्टि उत्पन्न होती है।[42]

अनिर्वचनीयख्यातिवाद का सिद्धान्त-

भारतीय दार्शनिकों ने ख्यातिपञ्चक (ज्ञान) का सिद्धान्त प्रतिपादित किया है। यह पञ्चख्याति हैं-

" आत्मख्यातिरसत्ख्यातिरख्याति ख्यातिरन्यथा ।
तथाऽनिर्वचनीयख्यातिरित्येतत्ख्यातिपञ्चकम् ॥
योगाचारा माध्यमिकास्तथा मीमांसका अपि ।
नैयायिका मायिनश्च पञ्च ख्यातीः क्रमाज्जगुः ॥"[43]

सामान्य अर्थ में ख्याति से तात्पर्य प्रसिद्धि, प्रशंसा, प्रकाश, ज्ञान आदि समझा जाता है। पर दार्शनिकों ने इसे सर्वथा भिन्न अर्थ में ग्रहण किया है। उन्होंने वस्तुओं के विवेचन की शक्ति को ख्याति कहा है और विभिन्न दार्शनिकों ने उसकी अलग-अलग ढंग से व्याख्या की है। इसकी पाँच व्याख्याएँ अधिक प्रसिद्ध हैं-

1. **आत्मख्याति:** - विज्ञानवादी बौद्धों के अनुसार आत्मा के साथ जो बुद्धि है उसकी ख्याति विषय के रूप में प्रतिभासित होती है। यथा- सीप को देखकर चाँदी का भ्रम उत्पन्न होता है। इस भ्रम का कारण बुद्धि द्वारा उनका तदाकार मान लिया जाना है। इस स्थिति में अन्य को बाह्य विषय की उपेक्षा नहीं होती।
2. **असत्ख्याति: -** शून्यवादी बौद्धों के मत से चाँदी का सीप प्रतीत होना असत ख्याति है। वाचस्पतिमिश्र ने इसी असत ख्याति का प्रतिपादन किया है।
3. **अख्याति- "यह रजत है": -** इस वाक्य में यह प्रत्यक्ष प्रतीति का विषय है। रजत प्रत्यक्ष प्रतीति का विषय नहीं है क्योंकि नेत्रादि का उसके साथ कोई संबंध नहीं। वस्तुत: रजत की प्रतीति स्मरण रूप मात्र है। किंतु यह भेद समझ नहीं पड़ता। इसलिये यह अख्याति है। मीमांसक इस प्रकार के अख्यातिवादी हैं।
4. **अन्यथाख्याति:** - एक वस्तु से दूसरे वस्तु के आकार की प्रतीति को अन्यथा ख्याति कहते हैं। यथा-सदोष इंद्रियों के संयोग के कारण ही सीप रजत जान पड़ता है। यह नैयायिकों का कहना है।
5. **अनिर्वचनीयख्याति:** - जिसमें सत् असत् समझ न पड़े; इस प्रकार वस्तु की प्रतीति इसका स्वरूप है। यथा-सीप के स्थान पर चाँदी का आभास सत्य नहीं है। प्रमाण का निरूपण करने से सत् वस्तु का बोध होता है या नहीं, यह विचारणीय है। विवेचन से जान पड़ता है कि यह चाँदी नहीं है। इस प्रमाण से वह असत है किंतु वह असत है ही यह निश्चित नहीं; क्योंकि असत है उसकी प्रतीति संभव नहीं। यहाँ सीपी चाँदी जान पड़ती है। इस प्रकार भ्रामक पदार्थ की प्रतीति अनिर्वचनीय ख्याति है। अद्वैतवेदान्त के आचार्यों ने इन पञ्चख्यातियों में से इसी अनिर्वचनीयख्याति का विचार संस्थापित किया। अनिर्वचनीयख्याति की परिभाषा करते हुए आनन्दबोधाचार्य ने न्यायमकरंद के अन्तर्गत लिखा है-

"सविलासविद्यानिवृत्तिरेव बाधस्तद्गोचरतैवानिर्वाच्यता ॥[44]"

आशय है कि कार्यादि विलाससहित अविद्या की गोचरता अनिर्वाच्यता है और उसी कार्यादि विलाससहित अविद्या की निवृत्ति बाध है। अनिर्वाच्यता की उक्त परिभाषानुसार शुक्ति एवं रज्जु आदि में अध्यस्त रजत एवं सर्पादि की सत्ता अनिर्वाच्य विषयों के अन्तर्गत आती है। जब रजत एवं सर्पादि की जननी अविद्या एवं अध्यास अनिर्वचनीय है, तो उनसे उत्पन्न शुक्त्यादि की अनिर्वचनीयता संगत है।

आचार्य शंकर माया की अनिर्वचनीयता को विवेकचूडामणि में व्याख्यायित करते हैं कि माया को सत्य भी नहीं कह सकते क्योंकि अद्वैत प्रतिपादन करने वाली बहुत सी श्रुतियाँ विरोध करती हैं। मिथ्या भी नहीं कह सकते क्योंकि इस माया का कार्य प्रत्यक्ष दृष्ट है, इसे साङ्ग एवं अङ्गरहित भी नहीं कहा जा सकता है, वस्तुतः यह अद्भुत अनिर्वचनीय है।[45]

---

[35] दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया ।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ॥ गीता ७/१४

[36] ब्र.सू.शां.भा. १/१/१/

[37] गीता शा.भा. १३-१४

[38] अदृश्यत्वादिगुणको धर्मोक्तेः॥ ब्र.सू.शां.भा. १/२/२१

[39] सत्यानृते मिथुनीकृत्याहमिदं ममेदमिति इति नैसर्गिको लोकव्यवहारः । ब्र.सू.अध्यास भाष्य

[40] अप्रत्यक्षेऽपि ह्याकाशे बालास्तलमलिनताद्यध्यस्यन्ति। ब्र.सू.अध्यास भाष्य

[41] एवमविरुद्धः प्रत्यगात्मन्यप्यनात्माध्यासः । ब्र.सू.अध्यास भाष्य

[42] तथैकस्मिन्नपि ब्रह्मणि स्वरूपानुपमर्देनैवाने का कारा सृष्टिर्भविष्यतीति। ब्र.सू.अध्यास भाष्य

[43] वेदान्त परिभाषा, भूमिका

[44] न्यायमकरन्द, पृ.१२५, चौखम्बा संस्करण, १९०७

[45] सन्नाप्यसन्नाप्युभयात्मिका नो भिन्नाप्यभिन्नाप्युभयात्मिका नो।
सांगाप्यनंगाप्युभयात्मिका नो महाद्भुताऽनिर्वचनीयरूपा ॥ विवेकचूडामणि १११

अनिर्वचनीयख्याति के अनुसार शुक्ति-रजत के उदाहरण में रजत की सत्ता न आत्मख्यातिके अनुसार चित्तगत है और न असत्ख्यातिवादी माध्यमिक बौद्ध के अनुसार असत्। अनिर्वचनीयख्यातिवादी शुक्ति में अध्यस्त रजत को सत् एवं असत् से विलक्षण मानते हुए उसकी प्रातिभासिक सत्ता स्वीकार करते हैं।

सत् एवं असत् से विलक्षण होने के कारण ही रजत अनिर्वचनीय है। अनिर्वचनीय रजत के सदसद्विलक्षणत्व के समर्थन में अनिर्वचनीयख्यातिवादी का कथन है कि यदि रजत पूर्णतया सत् हुआ तो अविद्यानिवृत्ति होन् पर उसका बाध न होता । अतः रजत को त्रिकालाबाधित सत् नहीं कहा जा सकता। इसके विपरीत अध्यस्त रजत को नितान्त असत् भी नहीं कहा जा सकता, क्योंकि रजत शशशृंग के समान नितान्त असत् नहीं है। यदि रजत नितान्त असत् हुआ होता तो भ्रमकाल में भी उसकी प्रतीति सम्भव न होती। इसीलिए शंकर तथा उनके अनुयायियों ने शुक्ति आदि में अध्यस्त रजतादि की प्रातिभासिक सत्ता को स्वीकार किया है।[46]

अविद्यावाद (अनिर्वचनीयतावाद) के विरुद्ध रामानुजीय सप्त अनुपपत्तियों का निराकरण-

अद्वैत वेदान्त के अविद्यावाद का वैष्णव दार्शनिकों ने जोरदार खण्डन किया है, क्योंकि अविद्यावाद के खण्डित हो जाने पर अद्वैतवाद पर ही प्रश्नचिह्न खडा हो जाता है। वस्तुतः अद्वैत ब्रह्मवाद की स्थापना अनिर्वचनीय अविद्या के सिद्धान्त के कारण ही हो सकी है। जिन दार्शनिकों ने अद्वैत के अविद्यावाद का प्रत्याख्यान किया है, उनमें रामानुजाचार्य का नाम पृमुख रूप से लिया जाता है। रामानुज ने अद्वैत वेदान्त के अविद्यावाद के विरुद्ध सात (७) प्रकार की अनुपपत्तियाँ प्रदर्शित की हैं। वे इस प्रकार हैं-

१. अविद्यास्वरूपानुपपत्ति-

आचार्य रामानुज ने श्रीभाष्य में कहा है कि अद्वैत वेदान्त में प्रतिपादित अविद्या का कोई स्वरूप सिद्ध नहीं हो सकता। रामानुजाचार्य का प्रश्न है कि अविद्यादोष सत्य है या मिथ्या? अद्वैतब्रह्म के साथ-साथ यदि अविद्या भी सत्य है तो अद्वैतवाद भी द्वैतवाद में परिणत हो जाएगा। अविद्या को मिथ्या कहने पर उस मिथ्या का मूल खोजना होगा, अतः अन्य दोष की कल्पना करनी होगी। इस प्रकार अनवस्था दोष होने लगेगा।[47] अद्वैतवादी इस अनुपपत्ति का खण्डन करतए हैं कि यह रामानुजीय अनुपपत्ति समीचीन नहीं है, क्योंकि अद्वैत वेदान्ती अविद्या को सत्य नहीं कहते हैं। सत्य तो एकमात्र ब्रह्म ही है। अविद्या को अलीकार्थ में मिथ्या भी नहीं कहा है, इसलिए न द्वैतवाद की आपत्ति है और न ही अनवस्था दोष है। अविद्या स्वयं अनादि है। अतः दोषमूल की खोज व्यर्थ है। अविद्या का स्वरूप सदसद्विलक्षण अनिर्वचनीय है। अतः स्वरूपानुपपत्ति का प्रश्न ही सम्भव नहीं है।

२. प्रमाणानुपपत्ति-

रामानुज के विचार से भावरूप अविद्या में कोई भी प्रमाण नहीं है। अद्वैतवेदान्ती "अहमज्ञः त्वदुक्तमर्थं न जानामि" इत्यादि प्रत्यक्ष प्रमाण के उदाहरण दिया करते हैं। रामानुज का कहना है कि इन उदाहरणों से भावरूप अविद्या की सिद्धि न होकर अभावरूप अविद्या की सिद्धि होती है। अहमज्ञः इत्यादि मानस प्रत्यक्ष में रामानुजाचार्य ज्ञानप्रागभाव मानते हैं। ज्ञानप्रागभाव अभावरूप है। अतः अविद्या भी अभावरूप ही है।

अद्वैत वेदान्ती अहमज्ञः इत्यादि अज्ञानप्रत्यक्षस्थलों में अज्ञान को भावरूप मानते हैं। उक्त उदाहरण में ज्ञाता अपनी अज्ञता को साक्षात्सम्बन्ध से प्रत्यक्ष करता है। अद्वैत मतानुसार अभाव का प्रत्यक्ष साक्षात्सम्बन्ध से नहीं होता। अभाव के साथ इन्द्रिय का साक्षात योग नहीं होता। घटशून्य भूतल में अभाव प्रत्यक्ष के लिए घटशून्य भूतल के साथ चक्षु का संयोग होता है। अद्वैत अनुपलब्धि नामक परोक्ष प्रमाण से अभाव का प्रत्यक्ष होता है। पूर्वोक्त दृष्टान्त में अज्ञान का प्रत्यक्ष साक्षात् होता है। अतः अज्ञान भावरूप है, अभावरूप नहीं। अहमज्ञः इत्यादि स्थानों पर एकान्तेन ज्ञान का अभाव है, इस प्रकार का प्रतिवाद नहीं कर सकते, क्योंकि अहमज्ञः इस प्रकार से अज्ञान का बोध भी एक प्रकार से ज्ञान ही है। अतः ऐसी स्थिति में अज्ञान का अर्थ ज्ञानाभाव नहीं समझना चाहिए।

३. अनिर्वचनीयत्वानुपपत्ति-

रामानुज ने अविद्यावाद में अनिर्वचनीयत्व की अनुपपत्ति भी दिखाई है। रामानुज का कथन है कि विश्व में दो श्रेणियां हैं- एक सत् और दूसरी असत्। सत् और असत् के मध्य में अथवा दोनों के अतिरिक्त तृतीय श्रेणी है ही नहीं। ऐसी स्थिति में अद्वैतवेदान्ती अनिर्वचनीय नामक तृतीय श्रेणी की वस्तु का नाम कहां से लेते हैं?[48] अनिर्वचनीय वस्तु की सिद्धि सम्भव नहीं है। रामानुजाचार्य का कथन है "सर्वाः च प्रतीतिः

सद्सदाकारा"।

अद्वैत वेदान्तानुसार अनिर्वचनीयत्वसिद्धि असम्भव और असंगत नहीं है। अद्वैतानुसार परमसत् ब्रह्म है तथा परम असत् अलीक आकाशकुसुमादि हैं। एक का बाध नहीं होता है और दूसरे की प्रतीति नहीं होती है। शुक्तिरजतादि भ्रमस्थलीय वस्तु की प्रतीति होती है, अतः अलीक नहीं है। इसका बाध हो जाता है, अतः ब्रह्म के समान सत् भी नहीं है। अद्वैतसिद्धिकार ने सद्विलक्षण होते हुए, असद्विलक्षण होते हुए जो मिश्रित रूप सदसद्विलक्षण कहा है, वही अनिर्वचनीय है।[49]

जो सत्त्व रूप से, असत्त्व रूप से एवं मिश्रित रूप से भी विचार का विषय नहीं बनता, वही अनिर्वचनीय है। अद्वैतसिद्धि में अनिर्वचनीयत्त्व साधक अनुमान भी प्रस्तुत किया गया है, अतः रामानुज द्वारा अनिर्वचनीयत्वानुपपत्ति सङ्गत नहीं है।

४.आश्रयत्वानुपपत्ति-

रामानुज की आपत्ति है ब्रह्म अविद्या का आश्रय नहीं हो सकता, क्योंकि ब्रह्म ज्ञानस्वरुप है। ज्ञान और अज्ञान परस्पर विरोधी हैं। जहां ज्ञान है, वहां अज्ञान नहीं रह सकता। ज्ञानोदय से अज्ञान की निवृत्ति होती है और यदि ब्रह्म को अज्ञान का आश्रय मान लिया जाएगा, तो अज्ञान से ब्रह्म का ज्ञानस्वरूपत्व नष्ट हो जाएगा।

[46] तथा च लोकेऽनुभवः शुक्तिका हि रजतवदवभासते ॥ ब्र.सू.शा.भा. उपोद्घात्

[47] श्रीभाष्य पृ.१६८-१६९ निर्णय सागर प्रेस

[48] श्रीभाष्य पृ.१७० निर्णय सागर प्रेस

[49] सद्विलक्षणत्वे सति असद्विलक्षणत्वे सति सदसद्विलक्षणत्वम् । (अद्वैतसिद्धि)

वस्तुतः अविद्या ज्ञानाभावरूप नहीं है, इसलिए अविद्या के कारण ब्रह्म में ज्ञान का नाश नहीं होता है। रामानुज का कहना है कि ज्ञान द्वारा अज्ञान की निवृत्ति कही गई है, अतः अज्ञान का आश्रय ज्ञानस्वरूप कैसे हो सकता है? किन्तु अद्वैतसिद्धिकार समाधान करते हैं कि विशुद्ध चैतन्य अज्ञान विरोधी नहीं है। अन्तःकरण प्रतिबिम्बितचैतन्य ही अज्ञानविरोधी है। अन्तःकरण में प्रतिफलित चैतन्य को इस मत में आश्रय नहीं माना गया है।[50]

अज्ञान का आश्रय जिस प्रकार ब्रह्म ब्रह्म है, उसी प्रकार विषय भी ब्रह्म ही है। ब्रह्म अज्ञान का विषय है, फिर भी ब्रह्म का स्वरूप वास्तविक रूप से आवृत्त नहीं होता है। विरोधी होने पर जिस प्रकार अग्नि जल में समाई रहती है, उसी प्रकार ब्रह्म में अविद्या के रहने पर भी ब्रह्म का प्रकाश नष्ट नहीं होता है। ब्रह्मविषयक अज्ञान जीव को ही होता है, इसीलिए ब्रह्म को ही अविद्या का विषय भी कहा जाता है। ब्रह्मविषयक ज्ञान से ही अविद्या का नाश होता है। ज्ञान और अज्ञान का विषय समान होता है, इसलिए भी ब्रह्म ही अविद्या का विषय सिद्ध होता है।

५. तिरोधानुपपत्ति-

ब्रह्म प्रकाशस्वरूप है। प्रकाशस्वरूप ब्रह्म के प्रकाश का तिरोधान अविद्या के द्वारा कैसे सम्भव है? ब्रह्म के प्रकाश के प्रकाश के तिरोधान का अर्थ होगा- प्रकाश का नाश।[51] अद्वैतवादियों का प्रत्युत्तर है कि तिरोधान का अर्थ ब्रह्म के प्रकाश का नाश नहीं है। प्रकाश की आपूर्त्ति न होना ही तिरोधान है, जैसे घनीभूत मेघ से सूर्य का प्रकाश तिरोहित हो जाता है। यहाँ पर भी अविद्या के आवरण से ब्रह्म का प्रकाश जीव के लिए आवृत्त हो जाता है। ज्ञानोदय से अविद्या की निवृत्ति होने से पुनः प्रकाश ही दिखाई देता है। स्वप्रकाश ब्रह्म में कल्पित आवरण सम्भव है। "ब्रह्म न प्रकाशते" यह बोध जीव को होता है।

६.निवर्तकानुपपत्ति-

अद्वैतानुसार निर्विशेषब्रह्मविज्ञान से ही अविद्या की निवृत्ति होगी। आचार्य रामानुज का कथन है कि निर्विशेष ब्रह्म प्रमाण सिद्ध नहीं है, अतः अज्ञान के निवर्तक की उपपत्ति नहीं हो सकती। "वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्" इत्यादि प्रकारों से श्रुति प्रमाण भी सविशेष ब्रह्म को ही सिद्ध करते हैं। अतः तत्त्वमसि, अहं ब्रह्मास्मि इत्यादि उपनिषद्वाक्य भी सगुण ब्रह्मबोधक होंगे।

किन्तु अद्वैतवादी इसका खण्डन करते हैं कि उपक्रम उपसंहारादि षड्लिङ्गविधि से परीक्षा करने पर निर्गुण ब्रह्म की सिद्धि असम्भव नहीं है। अतः सम्पूर्ण वेदान्तवाक्यों का तात्पर्य निर्गुण ब्रह्मवाद में ही है। उसी के बोध से अज्ञान की निवृत्ति होती है।

७.निवृत्यनुपपत्ति-

निर्विशेष ब्रह्म के साक्षात्कार से ही अविद्या की निवृत्ति बतलाई गई है, किन्तु रामानुज का कथन है कि ऐसा कहना असंगत है। रामानुज मत में जगत् प्रपञ्च सत्य है। जागतिक वस्तुएं अर्थक्रियाकारी नहीं हैं। इसीलिए ज्ञान से प्रपञ्च की निवृत्ति सम्भव नहीं। इसी प्रकार ज्ञान से अविद्या की भी निवृत्ति नही हो सकती, क्योंकि अद्वैतानुसार जीवब्रह्मैकत्व विज्ञान से ही अविद्या की निवृत्ति होगी। जीवब्रह्मैकत्व रामानुजानुसार मिथ्याज्ञान है।

परन्तु अद्वैतवेदान्तियों की मान्यता हैकि जागतिक पदार्थ अर्थक्रियाकारी होने पर भी ब्रह्म के समान सत् नहीं है। अतः उनकी तथा तदुपरान्त अविद्या की निवृत्ति निश्चित रूप से होनी है।अविद्या को विज्ञान नाश्य कहा जाता है। ज्ञानोदय से जिस प्रकार शुक्ति रजत की निवृत्ति होती है, उसी प्रकार ज्ञानोदय से अविद्या की भी निवृत्ति होती है। अविद्या अनादि है, किन्तु विनाशी है और विनाशी पदार्थ का नाश सर्वजनीन प्रसिद्ध है।

इस प्रकार अद्वैत वेदान्त के अविद्यावाद के विरुद्ध रामानुज ने सात अनुपपत्तियों का उपस्थापन किया है, जिसका प्रत्युत्तर अद्वैत दृष्टिकोण से दिया गया है। अनिर्वचनीय अविद्या की स्वीकृति द्वारा अद्वैत सर्वदा बतलाता है कि जो कुछ भी हमारे सामने विनाशशील वस्तुएं हैं, उनका एक दिन विनाश अवश्यम्भावी है। एकमात्र ब्रह्मनित्य है और अन्य सभी अनित्य हैं, इसीलिए मिथ्या हैं। अनिर्वचनीयत्व का अर्थ यहां पर प्रतीति समर्थ एवं अर्थक्रिया समर्थ मिथ्या से है। अद्वैतवेदान्त में अविद्या ही माया अथवा अज्ञान है ।

अनिर्वचनीयता के अन्य पक्ष-

सत्ता की चार (४) कोटियाँ हैं- सत्, असत्, सदसत् और सदसत्विलक्षण। अनिर्वचनीय वह है जिसे वाणी से न जाना जा सके-

"यद्वाचानभ्युदितं येन वागभ्युद्यते ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥"[52]

आचार्य शंकर ने उस अनिर्वचनीयता के सम्बन्ध में भाष्य में उद्धृत किया है कि जिस तत्त्व की समीपता इन्द्रियों की गतिशीलता से परे है। उस तत्त्व तक एकादशेन्द्रिय, मन आदि भी नहीं जा सकते हैं। किन्तु यदि साधु (धीरपुरुष) विषयों से वैराग्य उत्पन्न कर ले तो अवश्य ही ब्रह्मसाक्षात्कार में समर्थ हो सकेगा।[53]

वस्तुतः वाणी की एक सीमा होती है। यह सभी अर्थों के निर्धारण नहीं कर सकती है, किन्तु यदि दार्शनिक परिप्रेक्ष्य (वैयाकरणों की दृष्टि) में देखा जावे तो बुद्धि की दृष्टि में सभी कुछ बताया जा सकता है।[54] अतएव वैयाकरणों ने वाणी के चार स्तर माने हैं- परा, पश्यन्ती, मध्यमा तथा बैखरी। [55] उपनिषद्वाक्य तो बैखरी का रूप (उच्चरित

---

[50] अद्वैतसिद्धि

[51] प्रकाशतिरोधानं नाम प्रकाशोत्पत्ति प्रतिबन्धः, विद्यमानस्य विनाशो वा। श्रीभाष्य

[52] केनोप. शा.भा. १/४

[53] न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छति,
नो मनो न विद्मो न विजानीमो;
यथैतदनु शिष्यादन्यदेव तद्विदितादथो अविदितादधि।
इति शुश्रुम पूर्वेषां ये नस्तद्व्याचचक्षिरे ॥ केनोप.शां.भा. १/३

[54] न सोऽस्ति प्रत्ययो लोके यः शब्दानुगमादृते ।
अनुबद्धमिवज्ञानं सर्वं शब्देन भासते ॥ वा.प. १/१२३

[55] चतस्रो वृत्तयस्तस्य याभिर्व्याप्तास्त्रिधाणवः।
बैखरी मध्यमाभिख्या पश्यन्ती सूक्ष्मसंज्ञिताः ॥ वाक्यपदीयम् ब्रह्मकाण्ड
परावाङ्मूलचक्रस्था पश्यन्ती नाभिसंस्थिताः ।
हृदिस्था मध्यमाज्ञेया बैखरी कण्ठदेशगा ॥ परमलघु मञ्जूषा.स्फोटसिद्धान्त

प्रध्वंसाभाव से युक्त) हैं। वैयाकरणों के साथ-साथ साहित्यिक भी अनिर्वचनीय कुछ नहीं मानते हैं, किन्तु वे भाषा को महत्त्व देते हैं सत्ता को नहीं। इसीलिए वे शशश्रृंग, खपुष्प, वन्ध्यासुत, राहोः शिरः, वह्निना सिञ्चति आदि को सत्य मानते हैं। आचार्य नागेश भट्ट उदाहृत भी करते हैं-

"एष बन्ध्यासुतो याति खपुष्पीकृतशेखरः ।
कूर्मक्षीरचये स्नातः शशश्रृंगी धनुर्धरः ॥"

सत्ता न होने पर ये अनिर्वचनीय नहीं रहे। शब्द ऐसी बातों को भी कह रहा है जिसकी सत्ता नहीं है। न्याय सत्ता को पहले मानता है और भाषा को बाद में मानता है। इसलिए इस श्लोक को असत् बताता है। इसी भाव में न्यायशास्त्र भी सत्ता को अनिर्वचनीय नहीं मानता है। नैयायिकों का तर्क है कि जो कुछ भी सत् है उसका ज्ञान कराया जा सकता है, चाहे वह भाव हो अथवा अभाव। यथा- " भूतले घटः, भूतले घटाभावः " इत्यादि। किन्तु आचार्य शंकर इन सभी शास्त्रज्ञों का खण्डन कर अनिर्वचनीयता की स्थापना करते हैं।
वस्तुतः अद्वैतवेदान्तियों के अनुसार अनिर्वचनीयता का सम्बन्ध अज्ञान से है, इसी को मिथ्याज्ञान, विपर्यय, माया अथवा अविद्या कहा गया है। सत्ता की चारों कोटियों से विलक्षण ऐसा कुछ जो सत्य है, किन्तु निर्वाच्य नहीं है, वही अनिर्वचनीय है। रामानुज यद्यपि अनिर्वचनीयता का खण्डन करते है, किन्तु अद्वतवादियों के तर्क के समक्ष वे लेशमात्र भी टिकने में असमर्थ हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. सरस्वती. मधुसूदन.अद्वैतसिद्धि. सम्पा.अनन्तकृष्ण शास्त्री. परिमल प्रकाशन. दिल्ली. संस्क. १९९७ ई.।
2. पाण्डेय. शशिकान्त. अद्वैत वेदान्त में मायावाद. विद्यानिधि प्रकाशन. दिल्ली. संस्क.२००६
3. ईशादि नौ उपनिषद् (शाङ्कर भाष्य सहित). गीताप्रेस गोरखपुर. संस्क. संवत् २०७१ ।
4. ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्यम्. व्याख्या. सरयूप्रसाद उपाध्याय. भारतीय विद्या प्रकाशन. दिल्ली. संस्क. २०१३ ई ।
5. ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्यम् (सत्यानन्दी दीपिका सहित). व्याख्या. सत्यानन्द सरस्वती. चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान.दिल्ली. संस्क.२०१३ ई.।
6. ब्रह्मसूत्र शांकरभाष्य (रत्नप्रभा भाषानुवाद सहीत). अनुवाद.भोलेबाबा. भारतीय विद्या प्रकाशन. दिल्ली संस्क. २००३ ई.।
7. वाक्यपदीयम्. व्याख्या.हेलाराज. सम्पा.रघुनाथ शर्मा. संपूर्णानन्द सं.विवि. वाराणसी.संस्क.२००० ई.।
8. शंकराचार्य. विवेकचूडामणि. व्याख्या.चन्द्रशेखर शर्मा. कल्याण. मुम्बई. संस्क.१९६७ ई. (पुनर्मुद्रण) ।
9. धर्मराजाध्वरीन्द्र. वेदान्तपरिभाषा. सम्पा. श्रीरामशास्त्री मुसलगाँवकर. चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी. संस्क. २००० (पुनर्मुद्रण) ।
10. सदानन्द. वेदान्तसार. व्याख्या. राकेश शास्त्री. परिमल पब्लिकेशन्स. दिल्ली. संस्क. २००३ ई. ।
11. शंकराचार्य. सर्ववेदान्त- सिद्धान्त- सारसंग्रहः. सम्पा.रामस्वरुप शर्मा. भारतीय विद्या प्रकाशन दिल्ली. सं. २०१३ ई. ।
12. श्रीमद्भगवद्गीता (शांकरभाष्यद्येकादशटीकोपेता). सम्पा. गजानन शम्भू शास्त्री. परिमल पब्लिकेशन. संस्क.२०१० ई.।